साँवरा म्हारी प्रीत निभाज्यो जी

डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र

भक्तिकाल के कवियों ने अपने राम से जुड़ने के लिए विविध भावों से अपने प्रभु की आराधना की है। लगभग सभी की भक्ति में दीनता का भाव है। कहीं न कहीं सभी अपने परिवार, समाज और सत्ता से मानसिक एवं शारीरिक रूप से संतापित और प्रताड़ित थे। इनकी भक्ति में प्रेम, दीनता, करुणा, ममता का अगाध स्वर फूटा है। जहाँ कबीर अपने को राम का कूता कहकर पुकारते हैं वहीं पर सूरदास एवं तुलसी की अपने प्रभु के प्रति दीनता का भाव सर्वत्र विद्यमान है। मीरा तो अपने सांवरिया के प्रेम रंग में दीवानी होकर नाचती हैं। वे बार-बार कहती हैं कि— 'प्रभु मुझे तुम्हारा ही सहारा है, इसलिए मेरे प्रेम को निभाना।' परिवार में सास, ननद, सामंती राणा देवर कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए उन्हें तरह-तरह से दु:ख पहुँचाते थे। मीरा 'असरण सरण' पतितोद्धारक गिरधारी से बांह गहे की लाज रखने के लिए प्रार्थना करती है —

अब तो निभायां बाँह गह्या री लाज।
असरण सरण कह्यां गिरधारी पतित उधारण पाज।
भौसागर मझधार अधारां, थें बिण घणो अकाज।
जुग जुग मीरां हर भगतां री, दीश्यां मोच्छ नेवाज।
मीरा सरण गह्यां चरणा री, लाज रखां महराज॥ (1)

तत्कालीन समाज अपने सामाजिक मान्यताओं के विपरीत आचरण करने के कारण मीरा को पागल करार किया तथा कुल मर्यादा की रक्षा का निर्वाह न करने के लिए सास ने उन्हें कुलनासी कहा। वस्तुत: मीरा के दर्द को कोई नहीं पहचानता था। वह अबला की भाँति दर-दर ठोकरें खा रही थीं। 'म्हा अबला बल म्हारों गिरधर', 'मैं अबला बल नाहिं, गोसाईं, राखो अबकै लाज', 'मुज अबला ने मोती नीरांत थई रे', 'अरज करां अबला कर जोरयां स्याम तुम्हारी दासी' (2) आदि पंक्तियों में उनकी पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई। दरअसल उस समय सम्पूर्ण हिंदू जनसमुदाय दु:खी एवं उदास था। जैसा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि— "अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?" (3)

मीरा विशुद्ध रूप से भक्त थीं। वे कान्ता-भाव की उपासिका थीं। उन्होंने अपने को गिरधर गोपाल को पूर्णतया समर्पित कर दिया था। 'मीरां तो गिरधर बिन देखे, कैसे रहे घर बसिके' (4)। मीरा का अपना कोई नहीं, केवल गिरधर गोपाल है। उन्होंने भाई-बन्धु, सगे-संबंधी सबको छोड़ दिया। यही कारण कि वे अपने प्रभु से बार-बार विनती करती हैं कि— हे मोर-मुकुट धारी मेरी प्रीति को निभाना।

म्हारां री गिरधर गोपाल दूसरा णां कूयां।
दूसरा णां कूयां साधां सकल लोक जूयां।
भाया छांड्यां बन्धा छांड्या छांड्या सगा सूयां।
साधां ढिग बैठ बैठ, लोक लाज खूयां।
भगत देख्यां राजी हुयां जगत देख्यां रुयां।
असवां जल सींच सींच प्रेम बेल बूयां।
दध मथ घृत काढ़ लयां डार दया छूयां।
राणा विषरो प्यालो भेज्यां पीय मगन हूयां।
मीरां री लगण लग्यां होणा हो जो हूयां। (5)

रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि— "व्यक्तिगत संदर्भ से विशेषत: मीरां के कृतित्व में प्रेम और भक्ति के पक्ष सहज भाव से घुल-मिल गए हैं। यह सम्पृक्त अनुभूति, जो कबीर और जायसी में अलग-अलग रहस्यवादी प्रतीक-पद्धति में ढलती है और सूर में कृष्ण-राधा का प्रणय-चित्र बनता है, मीरां में सहज आत्मानुभूति का गीत बन जाती है।" (6)

मीरा के पहले सूरदास की गोपिकाओं ने लोकजीवन की मर्यादाओं की परवाह न करते हुए अपने सांवरिया कृष्ण से प्रेम किया। जो कि सामंती व्यवस्था को चुनौती देने

वाली मीरा की तुलना में कम मुश्किल था। लौकिक और अलौकिक धरातल पर प्रेम की महिमा और उसके रास्ते में आने वाली मुसीबतों का जिक्र भारतीय भाषा साहित्य के ग्रन्थों में भरा पड़ा है। मध्यकाल का पुरुष कवि भक्त होने के लिए जाति-पांति, धन, धरम आदि का परित्याग कर देता था तो स्त्री को लोकलाज, कुल मर्यादा, परिवार आदि को छोड़ना पड़ता था। वैसे तो हम भक्त कवियों और कवयित्रियों की भक्तिभावना का अर्थ मूलतः दार्शनिक स्तर पर करते हैं लेकिन इसमें बहुत सारी व्यंजनाएं छिपी हुई हैं। मीरा पति वियोगिनी और सामंती व्यवस्था में पलने वाली नारियों के दुःख-दर्द को समझ रही थी। मीरा की भावना उस समाज की नारी की भावना है जहाँ नारी अपने प्रेम की अभिव्यक्ति सहज तौर पर नहीं कर सकती थी। ऐसे परिवेश में वे अपने प्रभु के प्रेम में मगन होकर गाती हैं —

माई सांवरे रंग राची।
साज सिंगार बांध पग घूंघर, लोकलाज तज नाची।
गयां कुमत लयां साधां संगत श्याम प्रीत जग सांची।
गायां गायां हरि गुण निसदिन, काल ब्याल री बांची।
स्याम विणा जग खारां लागां, जगरी वातां कांची।
मीरां सिरि गिरधर नट नागर, भगति रसीली जांची॥ (7)

भक्तिकाल के अन्य कवियों की भांति मीरा ने किसी विशेष पंथ को नहीं अपनाया। उन्हें अपने सांवलिया से प्रेम करना है वह चाहे जैसे भी मिले।

मैं गिरधर के घर जाऊं।
गिरधर म्हांरो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
रैन पडे तबहि उठि धाऊं, भोर भये उठि आऊं।
रैन दिना वाके संग खेलूं, ज्यों त्यौं ताहि लुभाऊं।
जो पहिरावै सोई पहिरूं, जो दे सोई खाऊं।
मेरी उनकी प्रीत पुरानी, उन बिन पल न रहाऊं।
जहां बैठावे तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊं।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊं॥ (8)

मीरा सांवरिया के मिलन के सुख के लिए कबीर की भांति 'गले राम की जेवडी जित खींचौ तित जाऊं' की तरह अपना सब कुछ समर्पित कर देती हैं। मीरा ने सूर की भांति अपने गोविन्द को विभिन्न नामों से पुकारा है। यहाँ तक कि उन्होंने अपने प्रभु को जोगिया से संबोधित किया है। उससे मिलने के लिए वे सिर का मुंडन कर, शरीर पर भसम लगाकर भगवा धारण करने के लिए तैयार हैं। जैसा कि मैंने पहले ही कहा कि वे अपने प्रभु से मिलने के लिए सगुण-निर्गुण किसी भी मार्ग पर चलने के लिए तैयार हैं।

जोगिया जी छाइ रह्यां परदेश।
जब का बिछुडिया फेर न मिलिया, बहोरि दियो न संदेस।
या तन ऊपरि भसम रमाऊं, खोर करूं सिर केस।
भगवां भेख धरूं तुम कारण, ढूंढत च्यारुं देस।
मीरा के प्रभु राम मिलण कूं, जीवनि जनम अनेस॥ (9)

कबीर, सूर और तुलसी अपने प्रभु की भक्ति में गिड़गिड़ाते हुए अपने को अधम, पतित, पापी न जाने और क्या-क्या कह गए हैं। तुलसी ने तो 'सेवक सेव्य भाव बिन भव तरहिं उरगारि' कहकर दास भक्ति की महिमा का गुणगान कर डाला। मीरा अपने पुरुष से 'म्हाने चाकर राखो जी' की प्रार्थना करती हैं और उसके उद्यान में मालिन बनने की सोचती हैं। जहाँ वे 'चाकर रहसूं बाग लगासूं नित उठ दरसन पांसूं' की दृष्टि से एक साथ कितने ही लाभ पाने की कल्पना करती हैं।

नारी और पुरुष का परस्पर आकर्षण स्वाभाविक है, जो कि शाश्वत है। उसके मूल में काम और आध्यात्म दोनों रहा है। प्रेम मानव-जीवन की वह मूल वृत्ति है जो भिन्न-भिन्न स्थितियों, भिन्न रूप धारण कर समस्त क्रिया व्यापारों में व्याप्त रहती है। यही प्रेम-वृत्ति द्धा के मिल जाने से भक्ति का रूप धारण कर लेती है, जहाँ पर कि वह लोक के प्रेम से ऊपर उठ जाती है। जिसमें किसी प्रकार की मैल नहीं रह जाती। यहाँ शरीर को मंदिर बनाना पड़ता है। चित्त के साफ होने से जब एक बार उससे लगन लग जाती है तो संसार की मोहमाया सब बेकार लगने लगते हैं। एक अजीब सा दीवानापन आ जाता है। 'हे री मैं तो दरद दिवाणी, मेरो दरद न जाणै कोइ' कह कर मीरा अपने सांवरिया के लिए पागल हो जाती है।

भक्तिकाल के अन्य कवियों की भांति मीरा ने किसी विशेष पंथ को नहीं अपनाया। उन्हें अपने सांवरिया से प्रेम करना है वह चाहे जैसे, जिस हालत में मिले। कबीर अपने राम को भरतार और पिव से संबोधित कर उसके आने पर परम प्रसन्न होते हैं। उनके हृदय की विह्वलता "दुलहिन गावहुं मंगलचार, हमारे घर आए राजा राम भरतार" तथा "राम मोर पिय, मैं तो राम की बहुरिया" जैसी पंक्तियों के रूप में प्रकट होती है। यहीं पर सूर की दीनता भी देखते बनती है, 'अब कैं राखि लेहु भगवान', 'प्रभु मेरो अवगुन चित न धरयो', 'प्रभु हौं सब पतितन कौ टीको' आदि जैसे अनेक पदों में उनकी भक्ति भावना निचूरी है। तुलसी को तो उनके राम वैसे प्रिय हैं जैसे कि कामी पुरुष को नारी और लोभी को धन। मीरा इन भक्तों से कहीं और आगे निकल

जाती है। जैसा कि मैंने पहले ही संकेत किया है कि वे किसी विशेष मार्ग पर चलकर प्रभु को नहीं प्राप्त करना चाहतीं। उनके लिए उसकी प्रीति बनी रहनी चाहिए मार्ग चाहे जैसा भी हो। मीरा बार-बार निवेदन करती हैं --

सांवरिया, म्हांरी प्रीतडली निभाज्यो।
प्रीत करो तो स्वामी ऐसी कीज्यो, अधबिच मत छिटकाज्यो।
तुम तो स्वामी गुणरा सागर, म्हांरा औगुण चित मति लाज्यो।
काया गढ़ घेरा ज्यों पडया छे, ऊपर आपर खाज्यो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चित चरणां रखाज्यो ।। (11)

मीरां की इस सहज वेदना में सामंतयुगीन नारी की विवशता, करुणा, दीनता, परावलंबिता के साथ-साथ उनके प्रेम की स्वच्छंदता, पवित्रता और गम्भीरता की अभिव्यक्ति हुई है। इनकी जैसी भक्ति अन्य भक्त कवियों में नहीं दिखाई देती। दरअसल मीरा का प्रणयभाव आध्यात्मिक होते हुए भी लौकिक दृष्टि से स्वाभाविक और सहज है। सी.एल. प्रभात का विचार है कि— "नारीत्व के प्राणों में मचलती हुई आत्मसमर्पण की चिरन्तन दुर्दम्य कामना ही मीरा के प्रणय का मूल उत्स है। दुनियाँ की आँख बचाकर भी और पुरुष के हृदय का जो शाश्वत गूढ़ भाव मानव के समस्त जीवन को परिचालित कर रहा है, वही भव्य बनकर मीरां की कामना में बसा हुआ है। मीरां का भाव चिरंतन नारी का भाव है। उनका नारीत्व विलास के पथ का चंचल पथिक नहीं है।" (12)

मीरां ने पुरुष और नारी के बीच जो पवित्र और मर्यादापूर्ण प्रेम का बन्धन है उसी प्रेम के बंधन को अपने "गिरधर-नागर" के साथ स्थापित किया है। उनकी सरल हृदया नारी के प्रेम और विरह में जो सहज पवित्रता है, जो सरल गम्भीरता है, जो सौन्दर्य है वह समस्त हिंदी साहित्य में अद्वितीय है।

मैं जाण्यों नहीं, प्रभु को मिलन कैसे होइरी।
आए मेरे सजना, फिरि गए अंगना मैं अभागण रही सोयरी।
फारूंगी चीर, करूं गल कंचा, रहूंगी वैरागण होइरी।
चुरिया फोरूं, मांग बिखेरूं, कजरी में डारूं धोइ री।
निसि-वासर मोहि विरह सतावे, कल न परत पल मोहरी।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछरी मत कोइरी ।। (13)

मीरा के प्रस्तुत पद में प्रभु वियोग के साथ-साथ पति के संयोग और वियोग की झलक दिखाई देती है जिसे कि उन्होंने अपने सांवरिया कृष्ण पर आरोपित कर दिया। इसमें भारतीय समाज में विधवा नारी की स्थिति एवं पीड़ा की गहरी मार्मिक वेदना भी छिपी है। जिस हृदय ने सारा द्वंद्व और ताप झेला है उसने अपने दुखी जीवन को सुखी करने वाले 'प्रियतम का रूप निर्माण भी किया है। मीरा भाव जगत में उस प्रियतम से मिलती है। यह भावमिलन सारे भौतिक दुख, द्वंद्व को सार्थक और श्रेयस्कर बना देता है, विष को अमृत बना देता है। यह अमृत यों ही नहीं मिलता, यह संघर्ष का अमृत है।

मीरा का यह स्वप्न प्रिय के मिलन का रूप धारण किए है। इस मिलन स्थान का प्रतीक वृंदावन है। वहां सब कुछ सुखद है।

आली म्हाणे लागा वृंदावन नीकां।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविन्द जी कां।
निरमल नीर बह्यां जमणा मां, भोजन दूध दही कां।
रतण सिंहासण आप बिराज्यां, मुगट धरयां तुलसी कां।
कुंजन-कुंजन फिरया सांवरा, सबद सुण्या मुरली कां।
मीरां प्रभु गिरधर नागर भजण बिणा नर फीकां ।। (14)

मीरा ने अपने प्रभु के लिए सारे सुखों, ऐश्वर्यों का परित्याग कर दिया। वस्तुतः भक्ति सांसारिक धन-दौलत की उपेक्षा करती हैं। यह तो श्रद्धा और प्रेम के अद्‌भुत मिलन से बनती है। प्रेम की महिमा निष्काम भाव में निहित होती है। मीरा ने सब कष्टों को सहने और सब लोभों को त्यागने की शक्ति भक्ति भावना और भक्ति आंदोलन से प्राप्त की। भक्ति आंदोलन मुख्तः धार्मिक आंदोलन था लेकिन वह लोकोन्मुख था। सभी भक्त कवियों असामान्य को सामान्य धरातल पर लाकर खड़ा किया।

वर्तमान समय में भक्तिभाव में कमी होने के कारण तरह-तरह की समस्याएँ खड़ी हो रही हैं। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में कहें तो— "अनजान समस्याएँ गढ़ती रचती हो अपनी विनष्टि, कोलाहल कलह अनंत चले, एकता नष्ट हो, बढ़े भेद। सब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि। (15) वाली स्थिति पैदा हो गई है।"

मीरा की रचनाओं का मूल्यांकन उनके भक्ति भाव में छिपे युग संदर्भों के अनुसार करना चाहिए। नारी परतंत्रता की बात वे अच्छी तरह समझ रही थीं। इनके पदों में लोक-लाज, कुल को तोड़ने की बात बार-बार आयी है। यह बिना मतलब नहीं है। यह भाव समाज के बन्धन में जकड़ी हुई नारी का है। इनके पहले सूर की गोपिकाएँ कुल की मर्यादा के बन्धन को तोड़ चुकी थीं। तुलसीदास ने भी "कत बिधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख

नाहीं " कहकर नारी मन की स्वतंत्रता का समर्थन कर रहे थे। हाँ यह बात जरूर है कि इनकी नारी मर्यादा के अन्दर स्वतंत्र होनी चाहिए। मीरा की भक्ति में एक असहाय नारी की पीड़ा भी झलकती है।

विश्वनाथ त्रिपाठी का विचार है - "मीरा मध्यकालीन भक्त कवयित्री हैं। उनकी कविता में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन वे मध्यकालीन सामंती व्यवस्था की पीड़ित नारी, भक्त कवयित्री है। इस पीड़ित नारी को भूलकर उनकी कविता को हृदयंगम नहीं किया जा सकता। मध्यकाल का पुरुष कवि भक्त होने के लिए 'जाति-पांति, धन, धरम, बड़ाई' छोड़ता था तो स्त्री को 'लोक-लाज, कुलशृंखला' तोड़नी पड़ती थी।"(16)

वस्तुतः मीरा ने अपनी निजी एवं युगीन पीड़ा को भक्तिभाव के माध्यम से व्यक्त किया। यह उस समय के भक्त कवियों की नियति बन गई थी। आज के वैज्ञानिक, सूचना तकनीकी एवं मीडिया के युग में भी इंसान को थक हार कर उसकी शरण लेनी ही पड़ती है। उसे थोड़ी देर के लिए राहत वहीं मिलती है। भाव शून्य मनुष्य कब तक जिन्दा रह सकता है।

"सांवरिया, म्हांरी प्रीतडली निभाज्यो जी" कथन में मीरा के अगाध भक्तिभाव की सरल एवं सहज अभिव्यक्ति हुई है। उनके भक्तिभाव में अपने सांवरिया के प्रति प्रेम की दीवानगी एवं भावविह्वलता देखते ही बनती है। मीरा के पदों की सरलता और सहजता हमें अनायास अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा-403206

संदर्भ-सूची

1) मीरा की भक्ति और उनकी काव्यसाधना का अनुशीलन-भगवानदास तिवारी पृष्ठ-71
2) मीरा का काव्य-विश्वनाथ त्रिपाठी पृष्ठ-48
3) हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ-39
4) मीरा का काव्य-विश्वनाथ त्रिपाठी पृष्ठ-39
5) वही पृष्ठ-39
6) हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरूप चतुर्वेदी पृष्ठ-51
7) मीरा का काव्य-विश्वनाथ त्रिपाठी पृष्ठ-88
8) मीरा व्यक्तित्व और कृतित्व-पद्मावति पृष्ठ-418
9) वही-पृष्ठ-421
10) हिंदी काव्य में नारी-डॉ. वल्लभदास तिवारी पृष्ठ-377
11) मीरा व्यक्तित्व और कृतित्व-पद्मावती पृष्ठ-11
12) मीराबाई- सी.एल. प्रभात-पृष्ठ-12
13) मीरा काव्य - विश्वनाथ त्रिपाठी पृष्ठ-57
14) मीरा काव्य - विश्वनाथ त्रिपाठी पृष्ठ-57
15) कामायनी-जयशंकर प्रसाद-इडा सर्ग-पृष्ठ-150
16) मीरा का काव्य-विश्वनाथ त्रिपाठी पृष्ठ 63